Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

रीतिकालीन राज व्यवस्था में सामंतवाद का अध्ययन

विकास कुमार (भोध छात्र)

डॉ0 धनेश कुमार मीना (भोध सुपरवाइजर)

विषय. हिन्दी, कला विभाग, मंगलायतन विशवविद्यालय बेसवाँ, अलीगढ़

Abstract. Bhartiya samantvad Shabd ki baat karen to Bhartiya Janata ka vichar puratan Bharat ki ek Vishesh rajnitik vyavastha ki or jata Hai jise atirikt Roop se Bharat ki swayatta se pahle jamindari dhanche ke roop mein Mana jata Hai ek sahityakar Ne vistrit Aadhar per Bhartiya samantvad ki baat ki hai sahityakar Ne ise Bhartiya prashasan vyavastha ya pratishthit Parivar mein nahin rakhte Hain halanki yah swikar bhi karte hain aap sabhi Bhartiya jante Hain ki ek Desh aur ek rashtra prasha san karne Wale ine teenon kshetron ke bad madhyakalin Bhartiya samantvad ki sthapna Hui Hai lekhak Ne is drishtikon ko aur viksit Kiya aur yah dawa karte hue ke prachin Bharat ke rajnaitik dhaar mein kalatmak aur rajnitik Pradhan prachin Bharat mein main Gupt vansh ke samanya Kal ke dauran apne samanti Yug mein pahunche The isliye yah bhi spasht ho jata hai ki Bhartiya madhyakalin samantvad ek Vishesh pravritti ka Naam tha Jo tatkalyah Vishesh pravritti kya thi ki uska Swaroop kya tha yah kar aasan nahin hai isliye sahityakaron ko yahan Tak kahana pada ki madhyakalin Bhartiya samantvad ke per Bhasha karna Aaj kathin Hai jis prakar jitne bhi hinduvadi lekhak Hain hindu dharm ki utna hi paribhasha hai usi prakar madhyakalin Bhartiya samantvad per shodh karne Wale jitne vidwan Hain utane hi tarah ki paribhashaen Hain is shodh paper mein iska vistar ke sath ullekh Kiya gaya ha

मुख्य भाब्द, भारतीय सामंतवाद, भारतीय प्रशासन व्यवस्था, सामन्त, कोषाध्यक्ष ;भण्डार गाराधिकृतद्ध,दासता, चूड़ामणय आदि।

प्रस्तावना, अधिकांश मानव व्यवहारों में, आमतौर पर यह देखा गया है कि मध्यकालीन एशियाई राष्ट्र सामंतवाद शब्द ऐतिहासिक विकास के पूरी तरह से अलग वर्गों के साथ जाँच करने के लिए नियोजित है, ये श्रेणियाँ देश के अपने समय के संदर्भ में एक दूसरे से काफी दूर हैं। हर देश की सामाजिक व्यवस्था अलग होती है। देश की परिस्थितियाँ और समय के अंतर के कारण सामाजिक व्यवस्था अलग–अलग रूप धारण करती है।[1] एक निबंधकार को ध्यान में रखते हुए, जो यह जाँचने के लिए वापस आया है कि जिन परिस्थितियों में यूरोप के सामंतवाद का जन्म हुआ था, मध्यकालीन भारत में सामंतवाद के जन्म की परिस्थितियाँ उससे भिन्न थीं। राजपूत सामंतवाद की अपनी विशिष्टताओं और उद्गम की भिन्नता के कारण, मध्यकालीन यूरोपीय सामंतवाद से मध्यकालीन भारतीय सामंतवाद की समता नहीं की जा सकती। इस आधार की संपुष्टि 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल स्टडीज' की इस टिप्पणी में भी मिलती है कि कुछ मुस्लिम देशों में सामंतवाद और यूरोपीय देशों के सामंतवाद में मौलिक

भिन्नता थी। दूसरी ओर साहित्यकारों के अनुसार यूरोपीय सामंतवाद को किसान दासता के समकक्ष माना है। फिर भी यह आधार मध्यकालीन भारत पर लागू नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है कि मध्यकालीन भारत में बेरोजगारी और श्रम–मजदूरी के साथ दासता सामाजिक संबंधों का मुख्य अंग कभी नहीं रहा। इसी का समर्थन प्रसिद्ध इतिहासकार ने यह कहकर किया है कि 'मध्यकालीन भारत में सामंतवाद का जो प्रचलित रूप था, वह संसार के अन्य भागों में विद्यमान सामंतवाद जैसा नहीं था।'आगे उन्होंने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए एक विशेष बिन्दु की ओर संकेत किया है जिससे एक विशेष बात उभरकर सामने आती है।[2] यह बिन्दु इस प्रकार है– मध्यकालीन भारतीय सामंतवाद विश्व के दूसरे सामंतवादी रूपों से मुख्य रूप में समान होते हुए भी कुछ रूपों में उससे भिन्न था। तथापि अनेक लेखकों व इतिहासकारों ने मध्यकालीन भारतीय सामंतवाद को उसकी परिस्थिति और देश काल के सन्दर्भ में देखकर उसके स्वरूप निर्धारण के सराहनीय प्रयास किये हैं। यहाँ सामंतवाद को उसकी भिन्न परिस्थितियों की उपज के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। यूरोपीय देशों में नौवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक कुछ परिवर्तनों के साथ बहुत शक्तिशाली सामंतवाद और प्रशासनिक व्यवस्था दिखाई देती है। यूरोप के सामंतवाद के संदर्भ में यूरोप में भी एक मत दिखाई पड़ता है कि मानव जनसमूह इसे प्रशासकीय आवश्यकता का परिणाम मानकर चलता है। साहित्यकार इस बात को आगे बढ़ाते हुए स्पश्ट करते हैं कि 'यूरोपीय सामंतवाद रोमन और जर्मन की परम्परा से उत्पन्न स्वाभाविक व्यवस्था है और वही सारे यूरोप की देन भी है।[3]

हिन्दी भाशा में सामंतवाद का जन्म,

यहाँ सामंतवाद के जन्म को स्पष्ट किया जाता है। व्युत्पत्ति मूलक दृष्टि से 'सम' उपसर्ग में 'अन्त' प्रत्यय जुड़ने से 'सामन्त' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है सम्यक अतः यस्य अर्थात् जिसका अंत अच्छा है और समंतस्य अधिपति, सांमत अपत्ति समंत का स्वामी। कोशकार के अनुसार 'सामंत' एक संश्लिष्ट शब्द है। संश्लिष्ट, अत एकदेशःद्ध यस्य समंत तस्य ईश्वर ;अग्रद्ध जिसका अर्थ है अपने देश के पास रहने वाले देश का स्वामी राजा जो बड़े राजा को कर देता है। व्युत्पत्ति लण्य अर्थ की दृष्टि से सामंत शब्द की उत्पत्ति एक लातिनि शब्द फयूडम ;Feudum) से हुई जो अंग्रेजी में फीक (Fief) से बना। लेटिन भाषा के फयूडम शब्द से फ्रयूडिलिज्म ;Feudilism) शब्द बना जिसका अर्थ है ''जमीन का एक टुकड़ा'' जो किसी सेवा के बदले एक वि ोश मानव को दिया गया हो। सामंत का अर्थ यह राजपुरूष है, जिसके अधिपत्व में सीमावर्ती प्रदेश हो। अन्य कोश ग्रन्थों में भी सामंत का अर्थ सीमावर्ती राजा से लिया गया है।' भारत के अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में सामंत का प्रयोग जिस लय में

हुआ है, उससे यही ज्ञात होता है कि इसका अर्थ था स्वतन्त्र पड़ोसी। मोर्यात्तर काल की स्मृतियों में इस शब्द का प्रयोग पड़ोसी जमीन का मालिक के अर्थ में हुआ। सामंत शब्द पहले पड़ोसी के लिए प्रयुक्त होता था लेकिन पाँचवीं सदी में अधीन राजा के लिए प्रयुक्त होने लगा। शान्ति वर्मन काल के लगभग (455&70) एक पल्लव अभिलेखों में सामन्त के लिये चूड़ामणयः शब्दपद आया है। मनु की मनुस्मृति के अनुसार ''राजा के सहायक अधीन सरदार सामंत कहलाते थे जो उसके प्रति भक्ति प्रदर्शित करते और सैनिक सहायता देते थे।'' 455–70 ई. के अन्तिम चरण में दक्षिण और पश्चिम भारत के कतिपय दान पात्रों में भी यह शब्द अधीनस्थ सरदार के रुप में प्रयुक्त हुआ है।[4]

सामंतवाद और धर्म का सम्बन्ध, कुछ साहित्यकारों के अनुसार ईसवीं सन् सातवीं शताब्दी में प्राचीन भारत में सत्तर से अधिक स्वतंत्र सामंतवादी राज्य और सत्तावादी अधिकारियों को बड़ी–बड़ी सामंतवादी उपाधियाँ भी दी जाने लगी थी। भास्कर वर्मन के कोषाध्यक्ष ;भण्डार गाराधिकृतद्ध दिवाकर प्रभु को महासामंत की उपाधि मिली हुई थी।'' अर्थात् कई सामंतों का समूह। राजा हर्षवर्धन के राज्याधिकारी भी इस उपाधि से विभूषित थे। यह अति महत्व का विषय है कि इस प्राचीन समय में अधिकारियों और अधीनस्थ सामंत सरदारों को प्राप्त पंचमहाशब्द' की आडम्बरयुक्त उपाधि भी दी जाने लगी। भास्कर वर्मन के एक अनुदान पात्रा का मुख्य लेखक प्राप्त–पंचमहाशब्द के रूप में विदति था।'' यह उपाधि पहले सर्वोच्च सत्ताधरी ही धारण कर सकते थे, किन्तु बाद में सामंतों को भी यह उपाधि दी जाने लगी क्योंकि इस समय सामंत काफी बड़े–बड़े हो गये थे। एक इतिहासकार के अनुसार सामंती व्यवस्था को सातवीं शताब्दी से नकद वेतन के स्थान पर दी जाने वाली भूमि–अुनदानों से और अधिक बल मिला।'' सामंती व्यवस्था में कृषि का कार्य किसानों, आमतौर पर शूद्रों एवं दासों द्वारा ही किया जाता था जिसका वास्तव में उल्लेख मिलता है। इसमें स्वामी की सेवा के बदले सामंत को जमीन देने का उल्लेख है। गुप्तोत्तर समय में मुद्रा के अभाव ने भूमि–अनुदान परम्परा को और अधिक विकसित किया जिससे भारतीय सामंतवाद की नींव तैयार होती गई। प्राचीन भारतीय गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर काल में सामंतों को भौगिक और भोगपतिक आदि नामों से जाना जाता था। भोगित स्वभावतः शक्तिशाली सामंत–स्वामी हो गये थे जिस पर केन्द्रीय सत्ता का अंकुश अपेक्षाकृत बहुत कम रहने लगा था।[5] 'महाभोगी' का उल्लेख 'कादम्बरी' में भी हुआ है। छठी शताब्दी के अंतिम चरण में भोगपालक शब्द का उल्लेख मिलता है किन्तु जो भी हो भोगिक, भोगपतिक जैसे शब्दों से सामंतवादी सम्बन्धों की गंध तो आती ही है। यूरोपीय सामंतवाद ने यहाँ स्पष्ट रूप से अपनी छाप छोड़ी थी। जैसा कि उनके दृश्टिकोण से संकेत मिलता है, भूमि या भूखंड सामंतवाद के उपयोग के लिए है जो इसका मालिक या शासक है। यह बात प्राचीन भारतीय गुप्त काल में हमारे समक्ष आती है। कुछ पुरातत्वविदों ने इस वास्तविकता की

पुष्टि की है कि कुछ उल्लेखनीय मध्ययुगीन स्वामी शासक की सहमति के बिना भूमि दे सकते थे। ऐसे मध्यकालीन शासकों के अक्सर अपने उप–सामंत होते थे और इसी से एक संपूर्ण आदिम प्रथा आकार लेने लगी थी।[6] इसे गुप्त काल के बाद के एक उत्कीर्ण में संदर्भित किया गया है और यह आदिम प्रथा की शुरुआत का सबसे समय निष्ठ प्रमाण है। फिर भी, विशाल मध्ययुगीन शासकों का एक बड़ा हिस्सा शाही परिवार के संप्रभु या स्वामी के परिवार के कुछ सदस्य थे जो अवसर मिलने पर शासक का विरोध कर सकते थे। एक साहित्यकार का मत भी उल्लेखनीय है। उन्होंने सामंतवाद को छठी शताब्दी ई. पूर्व के लगभग मानते हुए कहा हैं कि ''छठी शताब्दी ई. पूर्व के लगभग प्राचीन उत्तर भारत में सामंती व्यवस्था का प्रसार दिखाई देता है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल के सामंत मण्डलों और जिलों से बंधे होते थे और अपनी पैदावर का एक निश्चित अंश जमींदार को देते थे। सामंत राजा द्वारा मिली हुई अपनी भूमि किसानों को लगान पर उठा सकते थे जिनसे वे एक ऐसा राजस्व वसूल करते थे जो दोनों की सहमति से निश्चित हुआ हो। इस राजस्व का एक भाग वे राजा को देते थे तथा शेष भाग में से वह एक सामंती सेना रखते थे जिसे युद्धकालीन समय में वह राजा की सेवा में भेजने के लिए वचनबद्ध रहते थे।

प्रसिद्ध इतिहासकार के अनुसार सातवीं शताब्दी से जो विद्वान भारतीय सामंतवाद का प्रारम्भ मानते हैं वह भ्रामक है।[7] इसका कारण यह है कि प्राचीन भारतीय सामंतवाद की एक लंबी परम्परा रही हैं भले ही उसका वह स्वरूप नहीं था जो पांचवीं शताब्दी से सुनिश्चित हुआ। इसकी वास्तविकता का प्रमाण सबसे पहले मारवाड़, सौराष्ट्र, उड़ीसा और बंगाल से प्राप्त पुरालेखों से स्पष्ट होता है। यह भूमि के पुरस्कार के कारण व्यक्तिगत पशुपालकों और श्रमिकों के आदान–प्रदान के आंकड़ों से एकत्र किया गया है। यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि पुरातन भारतीय सामंतवाद के बीज उनके पिछले सामाजिक और राजनीतिक ढांचे में उपलब्ध हैं। पाँचवीं से सातवीं शताब्दी तक, भारतीय मध्यकालीन शासकों के अधिकार और दायित्व भी स्पष्ट हो गए थे। इसके साथ ही सातवीं शताब्दी तक, सैन्य और नियामक बल, साथ ही साथ सामाजिक क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका तैयार की गई थी। बाण ने अन्य उपाधियों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, आदिम, महासामंत, प्रधान सामंत, विरोधी मध्ययुगीन और प्रतिसामंत आदि।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी में सामंत शब्द अच्छी तरह से स्थापित था और कम से कम छह प्रकार के सामंत थे। उनका मुख्य कर्तव्य अपने राजा के लिए एक सेना जुटाना था। इस युग में उप–सामंतीवाद की प्रवृत्ति से स्पष्ट संकेत मिलता है। नतीजतन, केंद्रीय प्राधिकरण निस्संदेह और

कमजोर हो गया। केंद्रीय शक्ति के कमजोर होने और सामंतों की शक्ति में वृद्धि का संकेत भी नारद के एक कानून से मिलता है। इन शक्तिशाली सामंतों की स्थिति सामंती समाज के मध्यम वर्ग की तरह थी।[8] स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि पाँचवीं से सातवीं शताब्दी अर्थात् गुप्त और उत्तर–गुप्त काल में भूमि अनुदान परंपरा ने भारतीय सामंतवाद की परंपरा को सुनिश्चित और विकसित किया। बाद के भारतीय शासकों में यह प्रवृत्ति धीरे–धीरे और विकसित हुई। भारतीय सामंतवादी फैलाव बढ़ता गया। गुप्त तथा हर्ष के समय में गृहीताओं को प्रशासनिक एवं राजस्व विषयक अधिकार देने की जो प्रक्रिया शुरू हुई, वह बाद के राजाओं के समय में भी चलती रही।[9] पाल शासन–काल में साधरणतया राजा स्वयं ही अनुदान दिया करता था।

पाल राज्य में धार्मिक कार्यों से सम्बन्धित वर्ग के हाथ में राजस्व और प्रशासनिक अधिकार सौंप दिये गये। प्रतिहार राजाओं ने उत्तर भारत में ब्राह्मणों को बहुत से गाँव दिये जिससे उनकी शक्ति बढ़ी।[10] प्रतिहारि राजाओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दान किये गये गाँवों के संदर्भ में प्रशासन सम्बन्धी उन विभिन्न अधिकारों का स्पष्ट– उल्लेख नहीं मिलता, जो पाल–अनुदान पत्रों में ग्रहीताओं को हस्तांतरित कर दिये गये है।[11] पाल एवं प्रतिहार राज्य युग में ग्रहीताओं को जो अधिकार दिये गये, उनकी अधिकता के परिणाम स्वरूप राजा और काश्तकारों के बीच एक भूमिधर वर्ग का उदय हुआ।[12] प्रतिहारों के सामंतों के राज्य में यह प्रक्रिया प्रबल रूप में विद्यमान थी।[13] भारतीय इतिहास में, प्रतिहार राजाओं द्वारा सीधे शासित प्रदेशों में धार्मिक अनुदान देने की प्रथा उतनी मजबूत नहीं थी जितनी कि उनके अधीनस्थ सामंती राजाओं के क्षेत्रों में थी। अनुदानकर्ताओं को कानून और व्यवस्था के साथ–साथ राजस्व एकत्र करने का अधिकार भी दिया गया था।[14] इस प्रकार, गुजरात और राजस्थान के कुछ हिस्सों में, भूमिधर धार्मिक अनुदानकर्ताओं का एक मध्यस्थ वर्ग, जिसके पास आंतरिक शांति और व्यवस्था बनाए रखने और राजस्व एकत्र करने की व्यापक शक्तियाँ थीं, का उदय हुआ।[15]

निश्कर्श, भारत में 'सामन्त' शब्द का प्रयोग राज्याधिकारियों के लिए एक उपाधि के रूप में किया जाने लगा। राष्ट्रकूटों के राज्य में अपने राज्याधिकारियों को सामंतवादी नाम और रूतबा देने की प्रथा जोर–जोर से चलने लगी। इस अर्थ में सामंत शब्द का प्रयोग विजित सरदारों के लिए किया जाता था। प्राचीन दक्षिण भारत में पांचवी शताब्दी में तृतीय चरण में 'सामंत' शब्द का प्रयोग अधीनस्थ सरदार के अर्थ में किया गया है। छठी शताब्दी के बल भी शासक सामंत–महाराज और महासामंत की उपाधि धारण किया करते थे। समय के साथ, कुचले हुए कबीले के नेताओं के बावजूद राज्य सरकार के लिए सामंतवाद का इस्तेमाल किया गया। डॉ. परतिका शरण ने गुप्त काल के सामान्य नेताओं के तीन वर्गों

में सामंतों के वर्गीकरण के बारे में सोचते हुए लिखा है, वे सामंत जिन्होंने अपने सिर पर आधिपत्य को स्वीकार किया, उनके आदेशों का पालन किया और उन्हें उपहार में नकद दिया और इसके अलावा उनके लिए लड़ाईयाँ भी लड़ी, जब आवश्यक हों। इतना ही नहीं, प्रभु उनके अधीन भूमि से प्रभार वसूल करते थे। सामंत राजा के अधीन एक ऐसा अधिकारी था जिसे अनुदान के रूप में भूमि प्राप्त होती थी और बदले में वह राजा को सैन्य सुरक्षा प्रदान करता था, सामंत राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे। सामंती स्वामी के पास कुछ प्रथागत प्रशासनिक अधिकार और सामाजिक दायित्व थे। जिसमें कृषि प्रणाली, कर संग्रह और स्वामी भक्ति प्रमुख थे। युद्ध के समय राजा सामंतों से परामर्श करता था। इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सामंत वह वर्ग था जिसे विशेशाधिकार प्राप्त थे। इसलिए इनमें भोग की प्रवृत्तियाँ आनी स्वाभाविक थी। इनकी उपाधि एवं रूतबे आदि के आधार पर इनके विभिन्न नाम भारतीय साहित्य एवं इतिहास में मिलते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दूसरे सामंतों को भी ऐसे अनुदान दिये जाते थे। इनमें से बड़े–बड़े सामंतों को पंच महावाधें के प्रयोग का अधिकार भी दिया जाता था। प्राचीन भारतीय सामंतों की शक्ति एवं उनके अधिकारों के आधार पर उन्हें विभिन्न उपाधियाँ एवं पदवियां प्राप्त थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 डॉ. राम ारण भार्मा, भारतीय सामंतवाद, पृ0. 73

2 रमेश कुन्तल मेघ, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ0 44

3 के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पृ0205.

4 रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 218

5 विजय कुमार अग्रवाल, स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामंती जीवन, पृ0 45

6 डॉ. बहुप्रकाश, भारतीय धर्म एवं संस्कृति, पृ0 115

7 आर. बी. पांडे, हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इन्सक्रिपशंस, पृ0 56, पंक्ति 50.

8 ए. पलक, मेमायर्स ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, पंक्ति, 5 पृ0 49

9 डॉ0 रामविलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास, पृ0 77.

10 डॉ. इन्द्रपाल सिंह, रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य, विनोद कुमार मन्दिर प्रथम संस्करण, 1965

11 डॉ. शिलाल जोशी, रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण, 1962

12 डॉ. सतीश कुमार भार्गव, रीतिकालीन वीर काव्य में रीति तत्व, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982

13 डॉ. मोतीलाल मैनारिया, राजस्थानी भाशा और साहित्य, प्रथम संस्करण, हि0ता0शो0 संस्था, उदयपुर

14 डॉ. अगर चन्द्र नाहटा, राजस्थानों में हस्तग्रन्थेां की खोज, प्रा0सा.शो0 संस्था, उदयपु

15 डॉ. मोतीलाल मैनारिया, राजस्थान का विंगल साहित्य